© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 07 | October - December 2018

श्रीमद्भगवदगीता में जीवन मूल्य और पुरूषार्थ–चतुष्टय

[1]श्री जयपाल सिंह राजपूत , [2]सरीता देशवाल
[1]सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।
[2]एम॰ए॰ योग द्वितीय वर्ष , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

शोध आलेख सार–
प्रस्तावना –
किसी भी इंसान के जीवन में मूल्यों का बड़ा योगदान होता है। क्योंकि इन्हीं के आधार पर अच्छा–बुरा या सही–गलत की पहचान की जाती है। शाब्दिक अर्थ में देखा जाऐ तो मूल्य का अर्थ कीमत होता है। परन्तु मानवता के विकास में इन जीवन मूल्यों का अमूल्य योगदान होता है। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथ श्रीमदभगवद गीता की पृष्ठभूमि महाभारत का युद्ध है। भारत के इतिहास का ऐसा युद्ध जो दो परिवारों के बीच घटित हुआ था। जिसका उद्देश्य था धर्म का पालन करना तथा सत्य को जीत हासिल करना। आज भी मनुष्य जब विषम परिस्थितियों में उलझा हातेा है तो गीता का ज्ञान उसको सही रास्ता दिखाता है। गीता में जो जीवन मूल्य वर्णित है वे आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। तभी तो गीता का प्रचार–प्रसार संपूर्ण जगत में हो पाया है। भारत ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी गीता पर कार्य हो रहा है। गीता एक ग्रंथ है जो देशकाल समयकाल की परिधि में न बंधकर संपूर्ण मानवता को स्फूर्तिदायक संदेश देता है।

ISSN 2454-308X
9 770024 543081

विषय वस्तु–

जीवन मूल्य का अर्थ–

1) मूल्य का अर्थ मानव जीवन के मूल या आधारभूत सार तत्व को समाहित करना है तथा मानव मात्र के लिए आवश्यक रूप से अनुकरणीय उन आदर्शमूलक दिशारोधक एंव आधारभूत अवधारणाओं का संकेत करते है। जिसकी व्यवहार एंव सामाजिक जीवन में अपितु सम्पूर्ण विश्व में सहज रूप में सामंजस्य एंव समग्र विकास का निर्माण होना सुनिश्चित है। मूल्य सदा परिवर्तनशील है। समय और आवश्यकता के अनुसार उनमें परिवर्तन आता रहता है। मूल्य बदलने से जीवन पद्धति बदल जाती है और जीवन पद्धति के बदलने से मूल्य बदल जाते है।

2) रामायण– रामायण में हमें एक आदर्श राज्य व्यवस्था का बोध होता है। अर्थात समाज शास्त्रीय आदर्शो की संहिता है।

3) गीता– इसी प्रकार गीता भारतीय परम्परा में प्रस्थानत्रयी का अंग है। यह 'कर्म और पुरूषार्थ' के साथ विवके सम्मत निर्णयात्मिका बुद्धि की पक्षधर है।

4) श्रीमदभगवद्गीता– अन्याय, अत्याचार अधर्म और असत्य के विरूद्ध संघर्ष की प्रेरणा देती है तथा यह मानव जीवन के सतत चलने वाली जीवन्त दिशा बोधक संजीवनी है।

5) श्रीमदभगवदगीता–

आज दुनिया को समन्वय की सर्वाधिक आवश्यकता है। ऐसे में भगवद्गीता प्रांसगिक में जाती है। स्वतंत्रता, समानता बंधुत्व, जनतंत्र समाजवाद धर्मनिरपेक्षता, सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति सममन सामाजिक विभेद की सुमप्ति, लैगिंग समानता अंतराष्ट्रीय सहयोग एंव पर्यावरण संरक्षण चेतना आदि महत्वपूर्ण मूल्य है। वर्तमान प्रबंधन शिक्षा के द्वारा शाश्वत मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए।

6) जिसमें आदर्श और पुरूषार्थ है जिसमें मानव जीवन का सम्पूर्ण विकास हो वही जीवन मूल्य कहा गया है।

(गीता में इन जीवन मूल्यों का भलीभांति निर्वाह करते हुए दिखाया गया है किस तरह श्रीकृष्ण–अर्जुन को अपने व्यक्तिगत मोह को छोड़कर युद्ध के लिए प्रेरित करते है।

कलैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वयपद्यते
क्षुद हृदय दौबल्भं त्यकतवोतिष्ठ परूतप।।

श्री कृष्ण जी अर्जुन से कहते है कि उच्च अवस्था प्राप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा और सुख तथा दुख में प्रभावों को समभाव से सह सकता है। वह निश्चय ही मुक्ति के योग्य है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण यही कह रहे है कि–

रां हि न त्यथय–ते ते पुरूषर्षथ

सददुःख सुखं पीर रोहमृतत्वाय कल्पते।।

शास्त्रो के अनुसार ऐसा गुरू जो निधं कर्म से रत हो और जो विवेकशुन्य हो, त्याज्यै हो दुर्योधन से आर्थिक सहायता लेने के कारण भीष्म तथा द्रोण उसका पक्ष लेने के लिए बाध्य थे। तथापि केवल आर्थिक लाभ में ऐसा करना उनके लिए उचित न था। ऐसी दशा में वे आचार्यो का सम्मान खो बैठे थे। किन्तु अर्जुन सोचता है कि इतने द्वार भी वे उसके गुरूजन है अतः उनका वध करके भौतिक लाभों का अर्थ होगा। रक्त से सने अवशेषों का भोग।

पाश्चात्य दृष्टिकोण–

भारतीय संस्कृति का मूल सिद्धांत है मानवतावाद। संसार एक विशाल प्रवाह है विश्व के संपूर्ण घटक इस अनन्त प्रवाह में बह रहे है। मनुष्य की विशेषता इसी में है कि वह इस प्रवाह में जीवन को उचित दिशा में ले जाने का प्रयत्न करे। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति सनातन मानव जीवन के लिए वरदान सिद्ध हुई है। जीवन मूल्य का व्याप्क स्वरूप वेदो से लेकर संस्कृत साहित्य में समाहित है। तत्पश्चात हिन्दी साहित्य में भी जीवन के विविध आयाम उद्घाटित हुऐ है। इसलिए कहा गया है कि साहित्य और जीवन एक–दूसरे के पूरक है। भारतीय संस्कृति में जीवन मूल्यों पर विशेष बल दिया जाता है। प्रत्येक विचारक तत्ववेता मनिषियों ने अपने तर्को के द्वारा मूल्यों का निर्धारण किया है। परन्तु यही निर्विवाद सत्य है कि मानवीय मूल्य जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है। परमार्थ ही आर्य जीवन का लक्ष्य बना। उपनिषदों को ही मानो सोमयोग कहा गया है तथा मनुष्य जीवन को यज्ञमय माना गया है। इस प्रकार जीवन के वास्तविक स्वरूप , महत्व और अंतिम लक्ष्य के संबंध में इतिहास में मूलतः दो परस्पर विरोधि विचार धाराऐं देखने को मिलती है।

1) प्रथम–

विश्व क्षण भंगुर तथा नश्वर है इसी कारण इसे असत्य माना है। "ब्रह्म सत्य" जगत् मिथ्या के अनुसार असत्य के पीछे दौड़ना व्यर्थ है। अतः इस भौतिक युग में काल्पनिक सत्य को छोड़कर परम सत्य की खोज में ही अपना संपूर्ण जीवन समर्पित करते हुए ईश्वर को प्राप्त करना ही हमारा ध्येय रहा है। इसीलिये हमारे ऋषिमुनि चिरंवदनीय है। उनके द्वारा प्रणीत इतिहास, पुराण, उपनिषद् का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि पूर्व काल में सभी प्रकार से उन्नति के शीर्षस्थ स्थान पर था। ज्ञान–विज्ञान, बल–बुद्धि, धन–धान्य, सुख–सम्पति, ऐश्वर्य–वैभव, प्रेम–परोपकार, शील–सदाचार, व्यापार, वाणिज्य कारीगरी और कला आदि प्रत्येक क्षेत्र में हमने अत्यधिक विकास करके आशातीत सफलता प्राप्त की थी। इसका मूल कारण यहाँ के लोग आत्मवादी ज्ञान–परायण थे। उनकी वेद शास्त्रों और वर्णाश्रम धर्म में अटूट श्रद्धा थी।

रामचरितमानस में वर्णाश्रम व्यवस्था पर गोस्वामी तुलसीदास के विचार–

"वर्णाश्रम निज–निज धरम, निरत लेद पथ लोगा।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, ताहि भय भोगन शोका।

2) द्वितीय–

इसके ठीक विपरित दूसरी विचारधारा के अनुसार जीवन की सफलता योगवाद में निहित है। उनका मानना है कि वास्तविक सत्य तो वर्तमान जीवन है। अधिकाधिक सुख–लाभ–भोग उस जीवन की सफलता है। परन्तु भारतीय चिंतन धारा इन दोनों विरोधि विचार पद्धतियों का समन्वय करता है।

जीवन मूल्य संबंधी भारतीय विचार–

भातरीय जीवन दर्शन की यही विशेषता है कि वह इहलौकिक व परलौकिक दोनों पक्षों की महता स्वीकारता है। सही जीवन की सार्थकता के लिए पुरूषार्थ चतुष्ययों का वर्णन किया जाता है। धर्म अर्थ काम मोक्ष को पुरूषार्थ चतुष्टय के नाम से जाना जाता है।

धर्म–

धर्म भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। वह व्यक्ति की क्रियाओं तथा व्यवहार को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। व्याकरण की दृष्टि से 'धर्म' शब्द धृत धारण धृ के आगे 'मने' प्रत्यय लगने से बनता है। प्रथम –'धृयते' लोक मनेन इति धर्मः अर्थात जिससे लोकधारण किया जाए वह धर्म है। "धियते यः स धर्म" इस प्रकार धर्म की मूल धारणा है जो धारण करे वह मूल धर्म है। अब यह प्रश्न उभरते हैं कौन धारण करे? क्या धारण करे? किसको धारण करे? महाभारत के उधृत निम्न श्लोक में उक्त कथन की पुष्टि होती है।

"धारण धर्म मित्याहु धर्मो धारयतेः प्रज्ञाः दतस्याहारण
संयुक्त स धर्म इति निश्चय।"

अर्थात् धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म प्रज्य को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे वही धर्म है। यही निश्चित है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि धर्म वह जो सत् कार्यो की ओर प्रेरित करता है, जिससे मानवता का विकास होता है साथ ही विश्व बन्धुत्व की भावना की और अग्रसर करता है। यह भी कह सकते हैं कि जो मानव जीवन की इस लोक में और प्रलोक में उन्नति एंव कल्याण करे जिससे मनुष्य मृत्यु प्रयन्त अभर्य एंव आत्म शांति का अनुभव करे जिससे सच्चा संतोष, सुयश प्राप्त हो, समाज और राष्ट्र में शांति एंव समानता स्थापित करने में सहायक हो वही धर्म है।

अर्थ –

अर्थ का सामान्य तात्पर्य भौतिक सुखों एंव आवश्यकाओं की पूर्ति के साधन से है। अर्थ शास्त्र में इसका सम्बन्ध मुद्रा से जोड़कर उसमें उपयोगिता, न्यूनता विनिमय क्षमता की प्रमुखता मानी है। 'धर्म' के बाद अर्थ की महत्ता इसलिए स्वीकार की जाती क्योंकि धर्म की पालनार्थ अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। यहां इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि जीवन मूल्य के संदर्भ में अर्थ से मतलब धन सम्पति नहीं है। वरन विशिष्ट प्रयोजन के लिए इसका आकलन किया गया है। वेदों में याज्ञिक तथा समृद्ध जीवन की एक अभिलाषा व्यक्त की गई है। ऋग्वेद एंव उपनिषदों की प्रार्थानाओं में धन–धान्य की वृद्धि, सांसारिक समृद्धि, शतायु होने की अभिलाषा, गायों और बछड़ो की वृद्धि, संतान की समृद्धि तथा जीवन की याचना की प्रार्थानाएं मिलती हैं।

शास्त्रों की भांति 'पंचतंत्र' एंव 'हितोपदेश' आदि लोक साहित्य में भी अर्थ की महत्ता प्रतिपादित की गई है। धन से भोज, विश्वास तथा सत्ता प्राप्त होती है। निम्नवशीं धनवान को आदर मिलता है जबकि उच्च वंशिय निर्धन को लोग निरादर की दृष्टि से देखते हैं, निर्धनता अभिशाप है और मृत्यु से बुरी है। संत तुलसीदास ने भी इस कथन की पुष्टि की है। देखिए–

"नाहीं दरिद्र सम दुख जगमाही।)

चणक्य ने अपने नीति ग्रंथ में भी धन को आपत्ति काल में सरंक्षक माना है जैसे,

"आपदथे धनं रक्षयेत।"

उपर्युक्त व्याख्यानों के आधार पर कहा जा सकता है कि जीवन मूल्यों में 'अर्थ' का अपना महत्व है। महाभारत में कहा गया है अर्थ ही धर्म और काम का आधार है। बिना धर्म के न मानव सांसारिक सुखों का उपभोग कर सकता है और न धर्म के कार्य –अतिथि सत्कार, समाज सेवा और परोपकार आदि कर सकता है। जीवन में अर्थ उपार्जन की निन्दा भी की गई है। क्योंकि जो व्यक्ति अर्थ संग्रह करता है उसी को जीवन की सार्थकता समझ लेता है। वह बाह्य रूप को महत्व देता है। लेकिन इसमें बाह्य और आन्तिरक मूल्यों का एक निष्ठभाव में निर्वाह किया जाना चाहिए।

काम–

भारतीय चिंतन पद्धति में जीवन मूल्यों की चर्चा करते हुए काम को तीसरे स्थान पर रखा गया। काम एक ऐसा जीवन मूल्य है जिसके सम्बन्ध में विद्वानों ने मतैक्य नहीं है। कुछ तो इसको प्राणी जगत की अपरीहार्य आवश्यकता स्वीकार करते हुए अन्य मूल्यों की भांति इसे भी अनिवार्य मूल्य घोषित करते हैं। जबकि कुछ विद्वान इसके प्रति विरोध प्रकट करते हुए निदृष्ट मूल्य मानते है।

सामान्य रूप से काम शब्द का प्रयोग दो अर्थो में होता है। एक तो संकुचित अर्थ जिसके अनुसार काम केवल इन्द्रिय सुख, योन प्रवृतियों की संतुष्टी मात्र है।

दूसरा अर्थ मनुष्य की समस्त प्रवृतियों, इच्छाओं तथा कामनाओं का समावेश है। तुलसीदास जी के अनुसार –

कमिहि नारि पिगारि जिये,
लोभहि प्रिय जिये दाय,
तिथि रघुनाथ निरंतर,
प्रिय लागहिं मांहि राय।।

जैसे लोभी व्यक्ति को धन प्रिय होता है उसी प्रकार कामी व्यक्ति को स्त्री प्रिय होती हैं श्रीमदभगवद गीता में भगवान श्री कृष्ण ने 'काम' को जीवन का महान शत्रु कहा है।

"जहि शत्रुं महाबाहो काम रूपं दुरासदम।" 3/43

वैदिक मान्यताओं के अनुसार काग भाव रोही सृष्टि की उत्पति हुई है। महर्षि वेद व्यास ने काम की उत्पति के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए इसे एक अद्धभूत वृक्ष स्वीकार किया है। जो मनुष्य के हृदय में उठता, मोह उसका बीज है, क्रोध और अभिमान उसके दो स्कंध है, कोई कार्य करने की इच्छा उसे सिंचने वाला जल का पात्र है, अज्ञानता उसकी जड़ है। प्रभाव जड़ के सिंचने वाला जल है दूसरों के दोष देखना उस वृक्ष के पत्ते हैं और पूर्व जन्म के पाप उसके सार भाग हैं। सात उसकी शाखाएं हैं, मोह और चिन्ता उसकी छोटी–छोटी डालियां हैं भय उसके अंकुर हैं। उस वृक्ष पर मोह को बस में करने वाली तृष्णा रूपी लतिकांए लिपटी हुई है। वृक्ष के नीचे लोभी मनुष्य लोहे की जंजीरों की तरह विषय वासना में गुथकर बैठे हुए तथा उसके फल पाने की आशा करते हैं।

मोक्ष–

यह जीवन का सर्वोच्च एंव अन्तिम पुरूषार्थ है। धर्म अर्थ काम को मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया गया हैं वस्तुत मोक्ष एक ऐसा जीवन मूल्य है जिसकी प्राप्ती के पश्चात कुछ भी पाना वांछित नहीं रह जाता। मोक्ष शब्द का आश्य है – अर्पण, विमोचन, मृत्यु छुड़ाना, बिखेरना, जन्म–मरण के चक्कर से छुटकारा पाना। हिन्दू विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्मा में है और यह जीव उसी स्वर का अंश है।

"ईश्वर अंश जीवन अविनायी
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

शरीर नश्वर है परन्तु आत्मा अमर है। अपने कर्मो द्वारा जीव बन्धनों को तोड़कर ईश्वर में लीन हो सकता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए स्पष्ट कहा है कि "सम्पूर्ण धर्मो को त्याग कर एक मुझ र्स्वशक्तिमान, र्स्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा। तू शोक मत कर" यहां धर्मोनुसार जीवन व्यतित करने पर विशेष बल दिया है। महाभारत में कहा गया है –

"हृदय स्थित परमात्मा को जो पुरूष जान लेता है और धीरे–धीर अपनी बुद्धि से उसकी परिक्षा करता है वह योग के द्वारा सत्य को जानकार परम सुख पाता है।" जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को देखकर म नही मन आत्म तत्व की खोज करता है फिर उसे किसी अन्य वस्तु के जानने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

मोक्ष सम्बन्धित इन समस्त धारणाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दुखों के निरूपण से वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होने पर ही मुक्ति संभव है। अतः यह स्पष्ट है कि मोक्ष की धारणा रहस्यात्मक एंव अध्यात्मक है। मानव जीवन का उद्देश्य मानव बने रहना ही नहीं, क्योंकि यह तो क्षणभंगुर कहा गया है जैसे–

"पानी केरा बुदबुदा,
अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायेगा
ज्यों तारा परभात।।

इसलिए कहा गया है कि मोक्ष ही परिपूर्ण सुख प्रदान करता है। इन सभी को ध्यान में रखते हुए अर्जुन को कर्तव्य करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं–

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
या कर्मफलहेतुर्भू: मा ते सड़गोस्त्यकर्माणि।।

धर्म क्षेत्र कुरूक्षेत्र में अर्जुन अपने स्वजनों को देखकर युद्ध से विमुख होने लगा तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा कि व्यक्ति को कर्मफल की इच्छा न रखते हुए निष्काम भाव से कर्तव्य पालन करना चाहिए।

निष्कर्ष–

इस प्रकार उपर्युक्त तत्वों के आधार पर हम कह सकते हैं कि गीता में जिन जीवन मूल्यों को मनुष्य के लिए आवश्यक बताया है उन मूल्यों को अपनाकर हम एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं। जब मनुष्य अपने पराये के भेद से मुक्त होकर समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए कार्य करेगा वही सच्चे अर्थो में मानव कल्याण के लिए कार्य कर सकता है। इसमें जीवन मूल्यों के स्वरूप,

विकास युगीन परिस्थितियों एंव चिंतको के प्रभाव को भी दर्शाया गया है। इसमें मानवता के विकास एंव जीवनोत्कर्ष को भी स्थापित किया गया।

संदर्भ सूची–

1 रामायण
2 गीता
3 श्रीमद्भगवदगीता
4 श्रीमद्भगवदगीता
5 श्रीमद्भगवदगीता
6 श्रीमद्भगवदगीता 2/3
7 उपरिवत अध्याय 2 श्लोक 5वां (2/5)
8 एकदशेपनिषद तृतीय प्र. पाठक खण्ड 16–17
9 महर्षि वेदव्यास महाभारत कर्णपर्व, पृ0 56–69
10 यजुर्वेद, अध्याय 18 द्वितीय प्रश्न मंच 8–13
11 गोस्वामी तुलसीदास– रामचरितमानस, उतराखण्ड दोहा, क्रमांक 1
12 चाणक्य –चाणक्य नीति पृ0 नं0 13
13 गोस्वामी तुलसीदास रामचरित मानस, उतरकाण्ड, दोहा पृ0 324
14 महर्षि वेदव्यास, श्रीमदभगतदगीता, अध्याय 3/43
15 वेदव्यास महाभारत, शांतिपर्व, उतरार्द्ध –430
16 श्रीमद्भगवत–गीता–अध्याय–7, श्लोक–11
17 गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, बाल काण्ड
18 श्रीमद्भगवदगीता अध्याय 1, श्लोक क्रमांक 66
19 श्रीमद्भगवदगीता